नक्सलवाद का तेज़ी से बढ़ता प्रभाव

पूरे देश में नक्सलवाद का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। इससे सरकार बुरी तरह परेशान और खौफ़ में है। केंद्रीय गृहमंत्री पी.चिदंबरम ने 'नक्सली आतंक' पर काबू पाने के लिए सेना तक को लगा देने की घोषणा की है। वायुसेना के अधिकारियों ने इस आशंका से भयभीत हो कर कि नक्सली उनके हेलीकॉप्टर मार गिरायेंगे, सरकार से उन पर जवाबी हमला करने की अनुमति मांगी है। सरकार इस बात से भयभीत लगती है कि कहीं नक्सलियों के पास मिसाइलें तो नहीं हैं। अब तक पुलिस एवं अर्द्धसैन्य बलों की नक्सलियों से जो मुठभेड़ें हुई हैं, उनमें नक्सलियों का ही पलड़ा भारी रहा है। सरकार की दमनकारी नीतियों के बावजूद लगातार नक्सलियों का प्रभाव क्षेत्र बढ़ता ही चला जा रहा है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह एवं गृह मंत्री चिदंबरम ने इसे आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा माना है। पिछले दिनों, देश के सभी राज्यों के पुलिस प्रमुखों की प्रधानमंत्री के साथ हुई बैठक विशेष तौर पर नक्सली हिंसा पर काबू पाने हेतु उपाय पर विचार करने के लिए बुलाई गई थी। इस उच्च स्तरीय बैठक से क्या निकला, इसका पता तो नहीं चल पाया, पर यह बात स्पष्ट हो गई कि दमनकारी नीतियों को और ज़्यादा बढ़ावा दिया जायेगा। वैसे प्रधानमंत्री ने यह स्वीकार किया है कि नक्सलवाद कानून-व्यवस्था से जुड़ा हुआ मसला नहीं है, बल्कि इसके लिए सामाजिक-आर्थिक कारक जिम्मेवार हैं। पर सामाजिक-आर्थिक कारकों के संबंध में सरकार कुछ कर नहीं सकती, इसलिए उसके पास नक्लवाद से मुकाबले के लिए सिर्फ़ दमन का अस्त्र रह जाता है। लेकिन समस्या यह है कि यह अस्त्र भी कारगर नहीं हो पा रहा है। लालगढ़ में नक्सलियों के दमन के लिए विशेष रूप से गठित बल कोबरा को भी लगाया गया, पर लालगढ़ पर नक्सलियों का कब्ज़ा बरकरार है। इक्की-दुक्की गिरफ़्तारियों से नक्सलियों पर कोई असर नहीं पड़ता। एक विशेष बात इस दौरान यह हुई है कि नक्सली हिंसा से बुरी तरह ग्रस्त राज्य झारखंड के राज्यपाल ने खुलेआम कहा कि नक्सली ईमानदार लोग़ों को नहीं मारते। इससे समझा जा सकता है कि शासन-प्रशासन पर नक्सली कितने भारी पड़ते चले जा रहे हैं। दरअसल, अब प्रशासन अथवा पुलिस का कोई बंदा यह नहीं चाहता कि उसे नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में नियुक्त किया जाये। ऐसा इसलिए कि नक्सलियों से बराबर जान का खतरा बना हुआ रहता है। अब पुलिस एवं प्रशासन तंत्र में लोग़ नौकरी कर चैन की बंसी बजाने के लिए आये हैं कि दिन-रात नक्सलियों के डर से सहमे हुए? सरकार नक्सलियों द्वारा मारे गये अफ़सरों व पुलिस के जवानों को 'शहीद' का दर्जा देती है और उनके घर वालों पर धन की बौछार कर देती है, फ़िर भी कोई सरकारी नौकरी जीविका यापन और मौज-मजे के लिए करता है, न कि जान देने के लिए। यही कारण है कि राज्यपाल ने यह संदेश दिया कि ईमानदार लोग़ों को नक्सली नहीं मारते। इसका मतलब यह भी है कि भ्रष्ट अफ़सरों और कर्मचारियों को वे छोड़ते भी नहीं और उन्हें अपनी जन अदालत में पेश कर देते हैं। वहां उनके लिए सजा निर्धारित की जाती है। लेकिन बताया जाता है कि अगर अफ़सर और पुलिस वाले ईमानदार हों तो मारने की जगह नक्सली उनकी मदद करते हैं। एक समस्या और भी है। अगर नक्सली एक-दो जिलों में हों तो प्रशासनिक अफ़सर और पुलिस वाले जुगाड़ लगा कर, मंत्रियों को पैसे खिला कर वहां जाने से बच भी सकते हैं, पर जब पूरे राज्य में एक भी ऐसा क्षेत्र न हो जहां नक्सली पुलिस-प्रशासन पर हावी न हों तो फ़िर क्या किया जा सकता है। फ़िर तो जान पर खेल कर नौकरी करनी ही है। प्राप्त जानकारी के अनुसार बिहार और झारखंड में अब शायद ही कोई ऐसी जगह बची हो जहां नक्सली सक्रिय न हों। इन दोनों राज्यों में नक्सली अपनी समानांतर सत्ता चला रहे हैं। इन नक्सलियों को दलित-उत्पीड़ित वर्ग का पूरा समर्थन प्राप्त है। ये ऐसी मांद में रहते हैं जहां पहुंच पाना पुलिस-प्रशासन के लिए मुश्किल काम है। पुलिस-प्रशासन हर वक्त यही दुआ मांगता है कि उसे नक्सलियों से सीधे टकराव में आने का मौका नहीं मिले। जहां तक पुलिस और अन्य अर्द्धसैन्य बलों से टकराव का सवाल है, हमेशा नक्सली ही उन पर भारी पड़ते आये हैं। झारखंड के एक पुलिस अधिकारी ने कहा था कि पूरे राज्य में नक्सलियों ने इस कदर लैंड माइन्स बिछा रखे हैं कि अगर दिन-रात लग कर उन्हें हटाने का काम किया जाए तो भी इसमें ढाई-तीन साल से कम नहीं लगेंगे। नक्सली आदिवासियों, दलितों और भूमिहीनों के बीच सक्रिय तो हैं, पर अब ये अपना जनाधार शहरी ग़रीबों और मज़दूरों के बीच बनाने की कोशिशों में लगे हुए हैं। कुछ शहरी जन समर्थक बुद्धिजीवियों में इनके प्रति समर्थन और सहानुभूति का भाव है। अभी हाल में सीपीआई (माओवादी) के पोलित ब्यूरो के सदस्य कोबाड गांधी के दिल्ली में पकड़े जाने के बाद यह स्पष्ट हुआ है कि उन पर राजधानी और आसपास के औद्योगिक क्षेत्रों में आधार विकसित करने की जिम्मेदारी थी। इससे स्पष्ट है कि नक्सली लगातार अपने प्रभाव क्षेत्र में बढ़ोत्तरी करते जा रहे हैं, यह अलग बात है कि इनकी राजनीतिक दिशा और कार्य प्रणाली से सामाजिक ढांचे में आमूल-चूल परिवर्तन लाने के लिए संघर्षरत विविध संगठन सहमत हों अथवा नहीं।

❑ मनोज झा

राजसत्ता के खिलाफ़ गुरिल्ला युद्ध

माओवादियों ने राजसत्ता के खिलाफ़ गुरिल्ला युद्ध छेड़ दिया है। इस बात को अब सरकार ने महसूस कर लिया है। सरकार ने यह भी महसूस किया है कि जहां नक्सली ताकतवर हैं, वहां आधारभूत संरचना यानी सड़क, बिजली, पानी आदि की व्यवस्था नहीं है, और यदि है भी तो नहीं के ही बराबर है। नक्सली पुलिस पर हमला कर घने जंगलों में छुप जाते हैं। उन जंगलों में पुलिस की गाड़ियां नहीं जा सकती। पुलिस में इतना साहस नहीं है कि वह जंगलों में नक्सलियों का पीछा कर उन पर वार कर सके। इसलिए अब सरकार यह योजना बना रही है कि पिछड़े आदिवासी इलाकों में सड़क, पुल और संचार व्यवस्था बनायी जाये। सरकार की यह सोच है कि सड़कें बनाने से पुलिस और अर्द्धसैन्य बलों के लिए जंगलों के बीच बसे गांवों तक पहुंचना आसान हो जायेगा जहां नक्सली शरण लेते हैं अथवा जहां उनके अड्डे हैं। आज तक सरकार ने पिछड़े इलाकों की कोई सुध नहीं ली। वहां विकास कार्य करवाना तो दूर की बात है। आदिवासी जीवन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं, फ़िर भी जीवन को कायम रखने के संघर्ष में लगे हुए हैं। नक्सलियों ने उनके जीवन में मानवीय आशा-आकांक्षाओं की लौ जलाई है। ऐसी स्थिति में वे नक्सलियों के पक्के समर्थक बन चुके हैं। नक्सलियों के भय से आदिवासियों और दलित वर्ग के शोषकों में अब उधर जाने का साहस नहीं रह गया है। जहां तक सड़क बनाने और बुनियादी सुविधायें मुहैया कराने की बात है तो सरकार ने पहले से ऐसा क्यों नहीं किया? आज़ादी मिले 60 वर्ष से ज़्यादा हो गये। अगर सरकार का यह मानना है कि सड़क बना कर नक्सलियों का पीछा करना आसान होगा और वे पकड़ में आ जायेंगे तो यह उसका सिर्फ़ भ्रम मात्र है। ऐसे क्षेत्र जो जंगल-पहाड़ में नहीं हैं और जहां पहुंचना एकदम आसान है, वहां भी नक्सली राजसत्ता को चुनौती देते रहे हैं। उदाहरण के लिये लगभग एक दशक पहले बिहार के गया ज़िले के टेकारी अनुमंडल में नक्सलियों ने थाना ही जला दिया था। वहां न कोई जंगल है और न ही पहाड़। जहां तक राज्य पुलिस का सवाल है, वह समझ चुकी है कि नक्सलियों से टकराने का परिणाम क्या होगा। इसलिये वह नक्सलियों को खदेड़ने अथवा उनसे मुठभेड़ का नाटक अवश्य कर ले, पर कभी वह उनसे असली लड़ाई नहीं लड़ती। अब तक पुलिस को सिर्फ़ मलाई खाने की आदत पड़ी हुई है। पर नक्सलियों के कारण अब उन्हें उतनी मलाई तो नहीं मिलती, जितनी पहले वे चाटा करते थे। अब तो चंद अपवादों को छोड़ दिया जाये तो पुलिस को हरा-भरा चारा कहीं नसीब नहीं होता, बल्कि जान के भी लाले पड़े रहते हैं। पुलिस सिर्फ़ अपनी जान बचा ले, यही बहुत है। ऐसी हालत में नक्सलियों से मुठभेड़ के लिये केंद्र से आये अर्द्धसैन्य बलों को ही लगाया जाता है जो उस इलाके से परिचित नहीं होते और न ही उन्हें नक्सलियों द्वारा की जाने वाली कार्रवाइयों का पहले से कोई अनुभव होता है। ऐसे में, नक्सलियों के साथ होन वाली मुठभेड़ों में उनकी ही जानें ज़्यादा जाती हैं।

नक्सली आतंक पर सैन्य कार्रवाई का सवाल

'नई दुनिया' दैनिक के संपादक आलोक मेहता ने 10 अक्टूबर के अंक में 'नक्सली आतंक पर सैन्य कार्रवाई' शीर्षक टिप्पणी लिखी है। इस टिप्पणी से यह पता चलता है कि नक्सलवाद जैसे ज्वलंत मुद्दे पर इनकी समझ कितनी सतही और छिछली है। इन्होंने नक्सलियों की तुलना आतंकवादियों और तालिबानियों से की है। इन्हें इस बात का भी क्षोभ है कि वरिष्ठ संपादकों के साथ अपनी मुलाकात में गृह मंत्री पी.चिदंबरम नक्सलियों के खिलाफ़ 'युद्ध छेड़ने' जैसे शब्दों के प्रयोग से बचते रहे जबकि उनसे बार-बार पूछा गया कि क्या सरकार नक्सलियों के खिलाफ़ युद्ध छेड़ना चाहती है?

गृहमंत्री ने सिर्फ़ पुलिस और अर्द्धसैन्य बलों की तैनाती के बारे में ही कहा। इन्हें इस बात का भी क्षोभ है कि झारखंड में नक्सलियों ने जिस पुलिस इंस्पेक्टर फ्रांसिस इंदिवर का गला काटा, वह नक्सलियों के समर्थक कई प्रगतिशील लोग़ों से दस गुना ग़रीब और कमजोर था तथा उसे छः महीने से तनख्वाह भी नहीं मिली थी। आलोक मेहता ने उन प्रगतिशील लोग़ों की भी निंदा की है जो आतंकवादियों, तालिबानियों और नक्सलियों का मानवतावाद के आधार पर समर्थन करते हैं। यह सफ़ेद झूठ है। कोई भी प्रगतिशील विचारधारा का व्यक्ति आतंकवादियों और तालिबानियों का समर्थन किसी भी वाद के आधार पर नहीं करता। हां, अगर आलोक मेहता को इन आतंकवादियों और नक्सलियों के बीच कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता तो उनकी बुद्धि पर तरस खाने के सिवा और कुछ भी नहीं किया जा सकता है। आलोक मेहता द्वारा नक्सलियों की तुलना आतंकवादियों और तालिबानियों से करने से यह भी पता चलता है कि पूंजीपतियों और सरकारी धन पर गुलछर्रे उड़ाने वाले पत्रकारों की आंखों पर कैसा पर्दा चढ़ा हुआ है अथवा वे सरकार के आगे ज्यादा से ज्यादा दुम हिला कर अपने लिए अधिक 'हड्डियों के टुकड़ों' का प्रबंध करना चाहते हैं। आलोक मेहता सरकार की आलोचना इस आधार पर भी करते हैं कि वह सीमा पार से आने वाले आंतकियों और देश के आठ राज्यों के 180 जिलों में तबाही मचा रहे नक्सलियों से निपटने के अलग-अलग तरीके अपनाती है। सरकार नक्सलियों को आतंकवादियों की श्रेणी में नहीं रखती। सरकार के मुखिया प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने नक्सल प्रभावित राज्यों के पुलिस प्रमुखों की बैठक में यह स्वीकार किया कि नक्सलवाद मात्र कानून और व्यवस्था से जुड़ी हुई समस्या नहीं है, बल्कि इसके लिए आर्थिक पिछड़ापन व विकास का न होना जिम्मेवार कारक हैं।

सरकार ने कभी भी नक्सलियों के लिए तालिबानी शब्द का प्रयोग नहीं किया। गत वर्ष प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने यह स्वीकार किया था कि नक्सलवाद की एक विशेष राजनीतिक विचारधारा है, पर उसका असर खत्म होता जा रहा है और उनके समर्थक शहरी बुद्धिजीवी भी पहले की बनिस्पत कम हो रहे हैं। यद्यपि यह सच नहीं है। शहरी बुद्धिजीवियों में नक्सलवादी विचारधारा के प्रति समर्थन कहीं बढ़ा ही है, यह अलग बात है कि बहुत से लोग़ नक्सलियों द्वारा की जाने वाली हिंसा के विरोधी हैं।

नक्सलवाद के पैदा होने और उसका लगातार प्रसार होते जाने का मुख्य कारण सरकारी संरक्षण में ग़रीब दलितों और आदिवासियों का सामंती व अर्द्ध सामंती तत्वों द्वारा किया जाने वाला अमानवीय शोषण है। इससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। वैसे मेहता भी यह मानने को मजबूर हैं कि नक्सलवाद का प्रसार लगातार बढ़ता जा रहा है, और वे यह भी कह रहे हैं कि 'लगभग 20 हजार नक्सली आतंकवादियों ने भारतीय लोकतंत्र, संविधान और जनता पर हमला बोल रखा है, जबकि लोकतंत्र के नाम पर कुछ संगठन, पार्टियां तथा मुट्ठी भर बुद्धिजीवी देश के दुश्मन तालिबानी शैली में नृशंस हत्या करने वालों के साथ बेहद नरम रुख अपनाने का दबाव बनाये हुए है।' मेहता के इन विचारों पर आश्चर्य होता है कि इन्होंने नक्सलियों को और उनके समर्थक बुद्धिजीवियों को देश का दुश्मन किस आधार पर बना दिया। यही नहीं, इन्होंने इनकी तुलना श्रीलंका के आतंकवादी संगठन लिट्टे से की है। इन्होंने यह भी कहा है कि जितना आतंक नक्सलवादियों ने फैलाया है, उतना जम्मू-कश्मीर और अफगानिस्तान में भी नहीं है। इन्होंने इस आधार पर सरकार को यह सलाह दी है कि वह नक्सलियों के विरुद्ध सैन्य कार्रवाई करने में कोई संकोच न करे। अत: सरकार को चाहिए कि वह मेहता को अपना रक्षा सलाहकार नियुक्त कर ले या इन्हें नक्सलियों के खिलाफ़ चलाये जा रहे अभियान का मुख्य अधिकारी ही नियुक्त कर ले। ये उसका बेड़ा पार लगा देंगे। आलोक मेहता ने कहा है कि यदि नक्सली हिंसा जारी रही तो विकास का काम कैसे होगा? नक्सली तो अपने प्रभाव क्षेत्र में डॉक्टर, इंजीनियर, यहां तक कि मास्टर को भी जाने नहीं देते। ऐसी हालत में पिछड़ों और अति पिछड़ों को खाद्यान्न मुफ़्त कैसे बांटा जा सकता है?

- शेष पृष्ठ 6 पर

नक्सली आतंकवादी नहीं : पीएम

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने अब यह साफ़-साफ़ कह दिया है कि नक्सली आतंकवादी नहीं हैं और उनके खिलाफ़ सेना का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। उन पर काबू पाने के लिये अर्द्धसैन्य बल ही काफ़ी हैं। उन्होंने नक्सलवादियों से वार्ता करने का प्रस्ताव रखा है, यदि नक्सलवादी हथियार डाल दें। पर यह संभव नहीं है। नक्सलवादी हथियार नहीं डाल सकते। मनमोहन सिंह ने यह भी कहा है कि आदिवासियों और दलितों को मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया जाएगा। सवाल है, पहले क्यों नहीं किया गया। आज़ादी मिले साठ साल से ज़्यादा हो गये। पहले अंग्रेज़ों ने इन्हें लूटा-निचोड़ा इसके बाद भारतीय शासन व्यवस्था में ये लूट के शिकार हो गये। लेकिन जब दलितों-आदिवासियों का शोषण चरम पर पहुंच गया तो उनके सामने हथियार उठा लेने के सिवा और कोई चारा नहीं रहा। प्रधानमंत्री ने नक्सलियों को आतंकवादियों के समकक्ष नहीं बता कर उनके विरुद्ध सेना का इस्तेमाल नहीं करने की बात कह कर समझदारी का परिचय दिया है, क्योंकि अगर उनके दमन के लिए सेना का इस्तेमाल किया जायेगा तो इसकी प्रतिक्रिया बहुत ही भीषण हो सकती है। इसके बारे में मेहता जैसे पत्रकार अपनी सीमित दृष्टि और भाड़े का टट्टू होने के कारण सोच भी नहीं सकते। मेहता ने नक्सलियों और आतंकवादियों को एक ही श्रेणी में रखा है, पर उन्हें जानना चाहिए कि इस आंदोलन से जुड़ने वालों में आतंकवादियों जैसे जाहिल, धार्मिक रूढ़िवादी और पैसे के लिए भाड़े पर भर्ती किये गये लोग़ नहीं हैं, वरन् उच्च शिक्षित, डॉक्टर्स, इंजीनियर और अन्य प्रोफेशनल लोग भी शामिल हैं अथवा उनके समर्थक हैं जिन्हें रोटी खाने के लिए बंदूक उठाने की जरूरत नहीं है। वे एक राजनीतिक व्यवस्था कायम करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, यह बात अलग है कि उनका यह रास्ता सही है अथवा गलत।